प्रवचन : 1

अब इस सम्बन्ध में अगर किसी भाई-बहिन के मन में कोई प्रश्न उठता हो तो और बात की जाये। बात ही तो करनी है और करना क्या है। अब इसमें क्या कठिनाई है भैया! हम पर जो जिम्मेदारी है उसे पूरा करने में कोई कठिनाई नहीं है। अगर हमें कठिनाई मालूम होती है जिम्मेदारी पूरी करने में, तो यह हमारा कोई भ्रम है। मिली हुई वस्तु, योग्यता, सामर्थ्य के द्वारा हमें वह जीवन नहीं मिल सकता, जिसकी हमें माँग है। मिली हुई वस्तु, योग्यता, सामर्थ्य के द्वारा किसी को क्षति नहीं पहुँचाना; अपितु दूसरों के लिए उपयोगी होना है। इतनी-सी तो बात है। मिली हुई वस्तु, योग्यता, सामर्थ्य, अपने लिए नहीं है, उसके द्वारा किसी को क्षति नहीं पहुँचानी है, अपितु उपयोगी होना है। इसी को कहते हैं-कर्तव्य-विज्ञान। इसी को कहते हैं धर्म-विज्ञान। उसके बदले में कुछ नहीं चाहिए, इसको कहते हैं—अध्यात्म-विज्ञान। धर्म-विज्ञान की पूर्णता से अध्यात्म-विज्ञान की प्राप्ति होती है। और जिसने हमें यह स्वाधीनता दी है, वही हमारा अपना है, उसकी प्रियता ही हमारा जीवन है। यह आस्तिक-विज्ञान है। इसे हक-परस्ती कहो, ईश्वर-भक्ति कहो कि जिसने हमें यह स्वाधीनता दी है कि हम धर्म-विज्ञान के द्वारा जगत के लिए और अध्यात्म-विज्ञान के द्वारा अपने लिए उपयोगी हो सकते हैं, उस दाता में आत्मीयता स्वीकार करना, उसकी प्रियता, स्मृति जगाना यह आस्तिक-विज्ञान है।

आप संसार को मानकर चलो तो भी साधक, और आत्मा को मानकर चलो तो भी साधक, और परमात्मा को मानकर चलो तो भी साधक। तीनों दृष्टियों से तुम साधक हो। अगर यह बात आपको जंचती हो, रुचती हो, सही मालूम होती हो, कोई इसमें शक और शुब्हा न मालूम होता हो तो इस पर विचार करके, मनन करके, अनुभव करके देख लो। और देखो, यह जीवन का व्रत है कि मिली हुई वस्तु मेरे काम नहीं आयेगी। इसको स्वीकार करना व्रत है। मिले हुए के द्वारा दूसरों की सेवा करना, यह व्रत है। बदले में कुछ नहीं चाहिए यह व्रत है। अगर ये तीन व्रत आप ले लेते हैं तो आपको वह जीवन जिसका कभी नाश नहीं होता, वह जीवन जिसमें जड़ता की गंध नहीं है, वह जीवन जो रस-रूप है, मिल सकता है। इतनी-सी बात है। अब इतनी-सी बात के लिए आप कितना समय लगायेंगे, यह आपकी मर्जी पर है। वास्तव में तो यह वर्तमान की चीज है।

देखो! इस व्रत को स्वीकार करना कि मिला हुआ मेरे लिए नहीं है, इसकी हमें स्वाधीनता है कि नहीं? अब यह शरीर छूटेगा तो मेरी क्षति होगी? मेरी तो नहीं होगी; क्योंकि मेरे लिए यह था ही नहीं। मिला हुआ मेरे लिए नहीं है। इसलिए अगर वह नाश होगा तो मेरी क्षति क्यों होगी! लेकिन हमें

यह क्यों मालूम होता है कि मेरी क्षति हो जायेगी। इसलिए मालूम होता है कि हम मिले हुए के द्वारा किसी-न-किसी प्रकार का सुख भोगते हैं। नेता बनने का शौक, राष्ट्रपति बनने का शौक, गुरु बनने का शौक, प्राइममिनिस्टर बनने का शौक यह जो हम भोगते हैं, इसलिए हमको मालूम होता है कि शरीर नाश हो जायेगा तो हमारा बड़ा भारी नुकसान हो जाएगा। अगर हमें पराधीनता-जनित सुख नहीं भोगना है या हमें पराधीनता-जनित सुख पसन्द नहीं है, तो शरीर के नाश होने से मेरा क्या नुकसान हो जाएगा? कुछ भी नहीं। जैसे अभी लोग कहते हैं कि भाई स्वामीजी की वजह से हमको बड़ी सुविधा मिलती है। तो तुम सुविधा देना सीखो दूसरों को। अगर शरणानन्द ने तुमको सुविधा दी है तो तुम सुविधा दो दूसरों को। आदर दिया है तो आदर दो। प्यार दिया है तो प्यार दो। तो इस प्यार के आधार पर जब तुम कहते हो कि शरणानन्द का शरीर नाश नहीं होना चाहिए तो इस प्यार का महत्त्व है या शरीर का महत्त्व है? अगर आपने भी इन तीनों बातों को मान लिया कि मैं दूसरों को सुविधा दूँगा, आदर दूँगा, प्यार दूँगा तो आप और शरणानन्द एक हो गये कि दो रहे?

श्रोता-एक हो गये?

जब एक हो गये तो आदर देने की भावना, प्यार देने की भावना, सहयोग देने की भावना-यह कभी नाश होगी? यह सत्य है, कभी नाश नहीं होगी। तो यह मैं आपसे निवेदन कर रहा था कि अगर हमको सचमुच कोई आदमी ऐसा मिला है जिसने हमको आदर दिया है, प्यार दिया है, सहयोग दिया है, हमारे प्रति सद्भाव रखा है, तो इन बातों को हम अपना सकते हैं कि नहीं अपना सकते?

एक दिन की घटना सुनायें आपको। हम लोग ट्रेन में जा रहे थे। संस्कृत कालेज के एक प्रिन्सिपल भी उसमें बैठे हुए थे। उनकी नौ साल की भतीजी (भाई की लड़की) का देहान्त हो गया था। उसके मोह में आबद्ध वे सज्जन बहुत दुःखी थे। और ट्रेन में प्रसंगवश, उस लड़की के गुणों का वर्णन कर रहे थे। गुणगान करते-करते उन्होंने यहाँ तक कहा कि एक दफा मैं बीमार हो गया तो वह बच्ची मेरे चारों ओर घूमी और कहा-'हे भगवान ! मेरे चाचा जी अच्छे हो जायें, मैं चाहे मर जाऊँ।' किसी बादशाह की भी यही बात है।

श्रोता-बाबर की है।

मैं मर जाऊँ। तो हमने जब उनको बहुत दुःखी देखा तो मैंने पूछा-पण्डित जी! अगर वह लड़की जिन्दा रहती और बड़ी हो जाती तो उसकी शादी करते कि नहीं? पण्डित जी बोले-'जरूर करते।' तो आपसे अलग होती कि नहीं? बोले-जरूर होती। अगर लड़की के गुण आपको पसन्द हैं तो उन्हें धारण कर लीजिए और यह तो आप जानते ही हैं कि लड़की आप

से अलग होती! तो वही चीज आपसे अलग हुई है, जो होती है। क्या उसके गुण अलग हुए हैं? तो किसके लिए रोते हैं आप? उस चीज के लिए रोते हैं जो अलग होती ही! गुण तो अलग होते नहीं। वे बोले कि इस तरह से मैंने सोचा नहीं था। मैंने कहा-पण्डित जी! अगर आपसे पूछा जाये कि क्या मोह दु:ख का मूल है? तो बोले-'इस पर किताब लिख सकता हूँ, लेक्चर दे सकता हूँ। "लेकिन क्या आपने यह अनुभव किया है कि मोह दु:ख का मूल है।' पण्डित जी एकदम शान्त और गम्भीर हो गये।

तो मैं आपसे यह निवेदन करना चाहता हूँ कि अपने शरीर छूटने का दु:ख न हमको होना चाहिए, न हमारे शरीर छूटने का दु:ख किसी और को होना चाहिए। क्योंकि जिन कारणों से तुम इस शरीर को पसन्द करते थे, वे बातें तो आप अपने में भी रख सकते हो न! क्या राय है? जी! तो मैं आपसे पूछता हूँ कि शरीर गुरु है कि जीवन का जो सत्य है वह गुरु है? अतएव जीवन के सत्य को स्वीकार कर आप सदा-सदा के लिए अपने गुरु से अभिन्न हो सकते हो। अगर यह बात आपको जँचे, रुचे, पसन्द आये तो थोड़ा मनन कर लिया जाए। हमारे जितने पथ-प्रदर्शक हुए हैं, रहनुमा हुए हैं, उनमें जो खूबियाँ थीं, उनमें जो सत्य था, वह सत्य आज नहीं है क्या? हम अपने पथ-प्रदर्शकों के सत्य को अपना नहीं सकते क्या? मानव सेवा-संघ ने मनुष्य का सबसे बड़ा पुरुषार्थ बताया है कि भैया! तुम सत्य को स्वीकार करो और सत्य कोई ऐसा तत्त्व नहीं है जिसे तुम नहीं जानते हो। उदार होना सत्य है, अचाह होना सत्य है, आत्मीयता स्वीकार करना सत्य है। बोले, आत्मीयता किससे स्वीकार करें?-कि भाई, जिसका प्रेम आपको प्राप्त करना हो, उसकी आत्मीयता स्वीकार करना सत्य है। और अचाह होना सत्य है, उदार होना सत्य है, बुराई-रहित होना सत्य है। जो जीवन का सत्य है उसे आप स्वीकार करें, इसी का नाम सत्संग है। और इस सत्संग से ही आपको साध्य की प्राप्ति हो जाएगी, अर्थात् आपकी माँग पूरी हो जाएगी। सत्य को स्वीकार करना आपकी जिम्मेदारी है और माँग पूरी होना स्वाभाविक है। सत्य को स्वीकार करने से माँग पूरी हो जाती है। सत्य को स्वीकार करने का नाम सत्संग है। सत्य की चर्चा करें, सत्य का चिन्तन करें, किसी अंश में सत्यकार्य भी करें, किन्तु सर्वांश में सत्य को स्वीकार न करें तो हमारा काम बनेगा? जी! नहीं बनेगा। इसलिए महानुभाव! हम सभी को मानव होने के नाते, साधक होने के नाते सत्य को सर्वांश में, सदा के लिए अपने द्वारा अभी स्वीकार करना है। यह आज की चर्चा का सार-सर्वस्व है।

तो, जिस प्रभु ने हमें सत्य को स्वीकार करने की स्वाधीनता दी है, उस प्रभु की महिमा गायें और सत्य को स्वीकार कर सदा-सदा के लिए कृत-कृत्य हो जायें। इसी सद्भावना के साथ आप सभी को बहुत-बहुत प्यार।